इकाई 31 औद्योगिक विधान

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 नियोजन संबंधी विधान
31.3 मज़दूरी और प्रसुविधाओं से संबंधित विधान
31.4 औद्योगिक संबंधों से जुड़े विधान
31.5 सारांश
31.6 शब्दावली
31.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
31.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

31.0 उद्देश्य

यह इकाई नियोजन, मज़दूरी और औद्योगिक विवादों को शासित करने वाले विधानों तथा विनियामक ढाँचे से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- औद्योगिक उत्पादन से संबंधित विनिर्दिष्ट विधानों के आर्थिक कारणों के बारे में जान सकेंगे;
- श्रमिक की नियोजन स्थिति को शासित करने वाले अधिनियमों के बारे में जान सकेंगे;
- मज़दूरी, बोनस और सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं के भुगतान से संबंधित अधिनियमों का अध्ययन कर सकेंगे; और
- श्रमिकों और नियोजकों के बीच सौदाकारी तथा उनके बीच किन्हीं विवादों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले विधानों को समझ सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

हमें उत्पादन के संगठन के लिए स्पष्ट कानूनों की आवश्यकता क्यों होती है? आखिकरकार हम अपने दैनिक जीवन में सभी तरह के श्रमिकों (घरेलू नौकरानियाँ, सुरक्षा गार्ड, कूड़ा इकट्ठा करने वाले, बढ़ई इत्यादि) को वकील का परामर्श लिए बिना, अथवा ऐसे नियोजन से संबंधित किसी भी कानून को जाने बिना पारिश्रमिक पर रख लेते हैं। सामान्यतया यह परस्पर विश्वास और स्थानीय प्रथाओं पर चलता है और जब तक कि कोई एक पक्ष विश्वासघात नहीं करता है हमें यह चिन्ता करने की जरूरत ही नहीं पड़ती कि 'क्या किया जा सकता है'। किंतु यह 'क्या किया जा सकता है' वाक्यांश अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है जब उत्पादन में बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं और विशेषकर जब विश्वासघात अथवा समझौतों के उल्लंघन से भारी हानि हो सकती है। इसलिए विश्वासघात के संभावित परिणामों की जानकारी से सबको अवगत होने के लिए प्राथमिकता नियम (Priori Rules) अवश्य होना चाहिए।

और अधिक विस्तार में, एक फर्म सिर्फ उत्पादन सुविधा नहीं है। यह विशेषकर एक आर्म निधि है जिसमें सभी भागीदार श्रमिक, प्रबन्धक, ऋणदाता तथा शेयरधारक - अपने संसाधन नई परिसम्पत्तियों के सृजन के लिए रखते हैं। आर्थिक कार्यकलापों को गठित करने के लिए संविदा के महत्त्व पर अवश्य ही बल देना चाहिए। संविदाओं के अनुकूलतम रूप में तैयार करने और उनके अनुकूलतम कार्यान्वयन के लिए कानूनों की आवश्यकता होती है। नि:संदेह, उनके उद्यम की सफलता अनेक

कारकों पर निर्भर करेगी जैसे उनके सहयोग का इतिहास, एक दूसरे पर विश्वास करने की क्षमता, सूचना का आदान-प्रदान और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बाज़ार दशाएँ। चूँकि उनके आदानों पर स्वामित्व से अधिशेष पर उनका अंतिम दावा निर्धारित होता है, भागीदारों के हितों में भी टकराव होता है जो उनके सहयोग को अस्थिर कर देता है। अतएव, ऐसे टकरावों को नियंत्रण में रखने के लिए उपयुक्त विधानों और विनियमों की आवश्यकता होती है। ऐसे नियमों के बिना, बड़े पैमाने पर उत्पादन का संगठन नहीं किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि सहमत मज़दूरी पर श्रमिकों के दावा के संरक्षण के लिए कोई कानून नहीं होता तो अनेक नियोजक काम हो जाने के बाद और इस आशा में कि समस्या पैदा करने वाले श्रमिक ऐसे फर्मों से दूर ही रहें, मज़दूरी के भुगतान में चूक करने के प्रलोभन में पड़ जाता। अतएव, हमें यह आश्वस्त करने के लिए कि सभी भागीदारों को उनका दावा मिलेगा, प्राय: हरबार यह सुनिश्चित करने के लिए कि पारस्परिक लाभ की सभी संभावनाओं का लाभ उठाया जाए, कानून की आवश्यकता पड़ती है।

इस तर्क को दक्षता तर्क कहते हैं क्योंकि यह औद्योगिक कार्यकलापों का संचालन सुनिश्चित करने के लिए कानून की भूमिका पर बल देता है। किंतु अन्य दृष्टिकोण भी हैं जो प्रत्येक को न्याय और सामाजिक कल्याण के आधार पर कानून की आवश्यकता का औचित्य सिद्ध करते हैं। ये दोनों दृष्टिकोण एक दूसरे के पूरक के रूप में देखे जा सकते हैं।

यह दक्षता दृष्टिकोण दो मुख्य परिणामों को सामने रखता है जिसके माध्यम से दक्षता कार्य करता है : (क) घटनोत्तर प्रभाव और (ख) प्रत्याशित प्रभाव। घटनोत्तर प्रभाव का अभिप्राय अवसरवादी व्यवहार को दंडित करना और हानियों के लिए क्षतिपूर्ति करना है। एक बार क्षति पहुँचाने के बाद कानून दंडात्मक भूमिका निभाता है। किंतु सहयोग के लिए सहमति के चरण में प्रत्याशित प्रभाव के संबंध में, कानून उत्पादन में भागीदारी के लिए प्रोत्साहन का प्रावधान करता है। दोनों का संयुक्त प्रभाव अधिक से अधिक आर्थिक कार्यकलापों को प्रोत्साहित करता है। किंतु हो सकता है यह आवश्यक रूप से सृजित अधिशेष का 'समुचित' वितरण नहीं कर सके। यही कारण है कि सामाजिक हित तर्क अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। अतिरिक्त कानून और विनियम प्रत्येक पक्ष को उसका समुचित हिस्सा सुरक्षित करने में सहायता करते है। उदाहरणस्वरूप, कभी-कभी वितरण न्याय दक्षता का समर्थन करता है : जब श्रमिकों को बोनस दिया जाता है, सकल लाभ में वृद्धि का प्रयास उनके हित में है जो वास्तव में श्रमिकों को मूल मज़दूरी के अतिरिक्त उनके आय को बढ़ाता है। इसी प्रकार, सामाजिक न्याय अथवा लिंग समानता के लिए सरकार को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए नौकरियों में आरक्षण अथवा समान कार्य के लिए समान वेतन का विधान पारित करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसी तरह से न्यूनतम मज़दूरी से नीचे भुगतान अवैध घोषित कर दिया जाना चाहिए, यदि सभी नियोजित श्रमिकों के लिए न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित करना सामाजिक उद्देश्य है।

इस इकाई में हम अपना ध्यान तीन प्रकार के विधानों पर केन्द्रित करेंगे; (क) नियोजन संबंधी कानून (ख) मज़दूरी और प्रसुविधाओं से संबंधित कानून, और (ग) औद्योगिक विवाद कानून। यहाँ यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि भारत में श्रम समवर्ती सूची में सम्मिलित है। इसका अभिप्राय यह है कि यह राज्यों और केन्द्र दोनों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हैं। अतएव, प्राय: सभी केन्द्रीय अधिनियमों का तद्नुरूपी राज्य स्तरीय अधिनियमों द्वारा अनुसरण किया जाता है, जो अनिवार्य रूप से उन्हें अधिक व्यवहृत (operational) और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संवेदनशील बनाता है। हमारी चर्चा मुख्य रूप से केन्द्रीय अधिनियमों तक ही सीमित रहेगी।

बोध प्रश्न 1

1) औद्योगिक उत्पादन संगठित करने के लिए हमें विधानों की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) औद्योगिक विधान के लिए दक्षता तर्क की विवेचना कीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

31.2 नियोजन संबंधी विधान

मूल अधिनियम जो एक औद्योगिक कर्मचारी की प्रस्थिति और नियोजक के साथ उसका/उसकी संबंध को परिभाषित करता है "औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946'' कहा जाता है। यह पहली बार 1946 में पारित हुआ तथा बाद में इसमें अनेक बार संशोधन किए गए। इस केन्द्रीय अधिनियम में भर्ती की शर्तें, स्थायीकरण, कदाचार, सेवा-मुक्ति, अनुशासनात्मक कार्रवाई, छुट्टी, अवकाश इत्यादि और नियोजकों द्वारा अधिक से अधिक यथावत् शब्दों में अपने कर्मचारियों को इन शर्तों से अवगत कराना अपेक्षित है। यह अधिनियम पूरे भारत में और इस समय सभी प्रतिष्ठानों जिसमें 50 या अधिक श्रमिक नियोजित किए जाते हैं अथवा पिछले 12 महीनों में किसी भी दिन नियोजित थे, पर लागू है।

कतिपय महत्त्वपूर्ण मानदंडो को निर्धारित करने में औद्योगिक नियोजन अधिनियम के साथ-साथ अन्य अनेक अधिनियम भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, कानूनी दृष्टि से, फैक्टरी किसे माना जाए अथवा 'श्रमिक कौन है और कौन नहीं है, यह परिभाषित करना अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इन परिभाषाओं के लिए और नियोजन को बुनियादी रूप से पहचानने के लिए हमें कुछ प्रसिद्ध केन्द्रीय अधिनियमों का उल्लेख करना चाहिए:

(1) कारखाना श्रमिकों के लिए **कारखाना अधिनियम, 1948** (2) खान श्रमिकों के लिए **खान अधिनियम, 1952** (3) रेलवे श्रमिकों के लिए **भारतीय रेल अधिनियम, 1890 और 1956 संशोधन** (4) पत्तन श्रमिकों के लिए **डॉक श्रमिक (नियोजन का विनियमन) अधिनियम 1948** (5) जल-भूतल परिवहन में सम्मिलित श्रमिकों के लिए **मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम, 1961** (6) खुदरा व्यवसाय, दुकानों और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों में श्रमिकों के लिए **साप्ताहिक अवकाश दिन अधिनियम,** 1942।

इनमें से, नि:संदेह कारखाना अधिनियम, 1948 सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसके दायरे में उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण द्वारा सर्वेक्षण किए गए उद्योगों का बहुत बड़ा हिस्सा सम्मिलित है। इस अधिनियम में 'कारखाना' 'श्रमिक' और 'कर्मचारी' की भी परिभाषा की गई है, जैसा कि इकाई 30 में वर्णित है। तथापि, यह अधिनियम अनेक सेवाओं, जैसे परिवहन, अथवा खुदरा व्यवसाय पर लागू नहीं है। अतएव इन उद्योगों को दायरे में लेने के लिए अलग अधिनियमों की आवश्यकता थी। यहाँ हमें नोट करना चाहिए कि इन अधिनियमों में से प्रत्येक और उनके राज्य स्तरीय प्रतिलेख के, उनके प्रयुक्ति की प्रकृति के स्पष्ट अंतर के कारण अलग-अलग क्षेत्राधिकार विस्तार थे। उदाहरण के लिए

कारखाना अधिनियम, 1948 पिछले पूर्ववर्ती बारह महीनों में किसी भी कार्य दिवस को विद्युत का प्रयोग करने वाले और 10 श्रमिकों को (अथवा विद्युत का प्रयोग नहीं करने वाले और 20 श्रमिकों को) नियोजित करने वाले कारखानों पर लागू है जबकि मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम, 1961 पाँच या अधिक श्रमिकों वाले प्रतिष्ठानों पर लागू होता है। फिर यह देखा जा सकता है कि औद्योगिक नियोजन अधिनियम में विनिर्दिष्ट बृहत् आकार अपेक्षाओं के कारण इसके अनेक उपबंध परिवहन श्रमिकों पर लागू नहीं हो सकते हैं। इसी तरह के सदृश मामलों में, अन्य औद्योगिक श्रमिकों के साथ समानता कायम रखने के लिए अलग अधिनियम बनाए गए थे।

अब हम सामाजिक हितों के उद्देश्य से बनाए गए कुछ उपबंधों और अधिनियमों का उल्लेख करते हैं।

(1) कार्य के स्थान पर महिलाओं के संरक्षण के लिए **कारखाना अधिनियम, 1948** रात्रि शिफ्ट में महिलाओं को मज़दूरी पर रखने से निषिद्ध करता है। (2) **बंधित श्रम पद्धति {उत्सादन (Abolition)} अधिनियम, 1976** का उद्देश्य बंधित श्रम की कुख्यात समस्या का उन्मूलन करना है। (3) बाल श्रम को विनियमित करने और अंत: इसके समूल विनाश के लिए दो महत्त्वपूर्ण अधि नियम है। **बालक (श्रम गिरवीकरण) अधिनियम 1933 और बालक श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986**। पहले अधिनियम (1933 का) ने बाल (15 वर्ष की आयु से कम) श्रम को पूर्णतया ग़ैर कानूनी घोषित कर दिया तथा किसी भी उल्लंघन के लिए माता-पिता अथवा अभिभावकों को दोषी माना। तथापि, चूँकि इस कानून का प्रवर्त्तन कठिन था और बाल श्रम को मज़दूरी पर रखने की प्रथा जारी रही, एक अधिक यथार्थवादी कानून 1986 में पारित किया गया जिसने कतिपय प्रतिबंधों (जैसे कोई रात्रि शिफ्ट नहीं, कोई समयोपरि कार्य नहीं) के अधीन कुछ उद्योगों में बाल श्रम की अनुमति दी। अनेक उद्योगों, जिन्हें बाल स्वास्थ्य के लिए खतरनाक अथवा बाधक माना जाता है, में बाल श्रम नियोजन कठोरतापूर्वक निषिद्ध है। कालीन बुनाई और पटाखे दो ऐसे उद्योग हैं। (4) अंत: ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 ने कतिपय प्रकार की श्रम प्रथाओं जो प्रचलन में थी, किंतु जिसे सरकार द्वारा हतोत्साहित किया गया (जिसने सभी नियाजनों को स्थायी करने के लक्ष्य को पोषित किया था) को मान्यता दी। इस अधिनियम ने जहाँ ऐसे कर्मचारियों (जो औद्योगिक नियोजन अथवा सदृश अधिनियमों में विनिर्दिष्ट शर्तों के अलावा पृथक् ठेका संबंधी शर्तों पर कार्य करने के लिए सहमत होते हैं) को कानूनी सुरक्षा देने की आवश्यकता को मान्यता प्रदान करते हुए इस प्रथा की अंत: समाप्ति को लक्ष्य बनाया। किंतु जैसा कि हम जानते हैं, इस समय न सिर्फ निजी उद्योगों में अपितु सरकार में भी ठेका श्रमिकों को मज़दूरी पर रखने की प्रथा अधिक से अधिक लोकप्रिय होती जा रही है।

बोध प्रश्न 2

1) औद्योगिक नियोजन अधिनियम (स्थायी आदेश), 1946 के मूल उद्देश्य क्या हैं, चर्चा कीजिए?

.....

.....

.....

.....

.....

2) कारखानों, खानों, पत्तन् और रेलवे में नियोजन को शासित करने वाले चार अधिनियम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) सही के लिए 'हाँ' और गलत के लिए 'नहीं' लिखिए।

क) कारखानों में पुरुषों की भाँति महिलाओं को रात्रि शिफ्ट में नियोजित करना कानूनी है। ( )

ख) बाल श्रम सदैव ही ग़ैरकानूनी नहीं हैं। ( )

ग) साप्ताहिक अवकाश दिन अधिनियम, 1942 सरकारी कार्यालयों में अवकाश से संबंधित हैं। ( )

घ) औद्योगिक नियोजन अधिनियम पूरे भारत में लागू है। ( )

31.3 मज़दूरी और प्रसुविधाओं से संबंधित विधान

किसी श्रमिक के उपार्जन (आमदनी) में विशेष रूप से अनेक संघटक होते हैं जैसे मूल मज़दूरी, मंहगाई भत्ता, बोनस, कतिपय वस्तु-रूप प्रसुविधा (जैसे चिकित्सा अथवा कार्य स्थान पर खाद्य), और आस्थगित संदाय जैसे सेवानिवृत्ति प्रसुविधा। चूँकि मज़दूरी अनेक रूप में दी जाती हैं एवं दीर्घकालीन नियोजन में इसके महत्त्वपूर्ण निहितार्थ होते हैं, और तद्नुसार श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए कानून बनाए गए हैं। तथापि, जिस मूल अवधारणा पर सरकार ने मज़दूरी विधानों को अधिनियमित किया वह यह था कि कम मज़दूरी अर्जित करने वाले श्रमिकों को विधान के माध्यम से विशेष सुरक्षा की आवश्यकता है जबकि अधिक मज़दूरी अर्जित करने वाला श्रमिक, यदि चूक अथवा संविदा भंग होती है तो स्वयं ही कानूनी उपचार प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न विधान पारित किए गए हैं जिनके माध्यम से नियोजकों को श्रमिकों, विशेषकर कम मज़दूरी अर्जित करने वाले श्रमिकों के प्रति अपना वित्तीय उत्तरदायित्व पूरा करना अपेक्षित है।

मज़दूरी के मामले में पहला महत्त्वपूर्ण अधिनियम **मज़दूरी संदाय अधिनियम** (Payment of Wages Act), 1936 था जिसका लक्ष्य मज़दूरी का तुरंत तथा नियमित भुगतान और नियोजकों द्वारा जानबूझकर चूक करने एवं श्रमिकों के शोषण को रोकना था। इस अधिनियम ने राज्य को औद्योगिक प्रतिष्ठानों में मज़दूरी पद्धति की निगरानी करने और दोषी पाए गए नियोजकों पर भारी जुर्माना करने की शक्ति प्रदान की। उद्योग की दृष्टि से इस अधिनियम का दायरा अत्यधिक विस्तृत है क्योंकि इसके क्षेत्राधिकार में कारखाना अधिनियम, 1948 के अंतर्गत आने वाले कारखाने, रेलवे, निर्माण, उद्योग, खान, मोटर परिवहन सेवाएँ, बागान और अनेक अन्य उद्योग आते हैं। किंतु इस अधिनियम का संरक्षण किस श्रमिक को मिलेगा यह निर्धारित करने के लिए अधिकतम मज़दूरी सीमा नियत की गई है। 1982 के इसके संशोधन के अनुसार, इस अधिनियम के अन्तर्गत वे श्रमिक आते हैं जो एक महीने में 1600 रु. से कम अर्जित करते हैं। स्पष्ट है, श्रमिकों की दृष्टि से इस अधिनियम का दायरा सिकुड़ता जा रहा है, क्योंकि यह अधिकतम सीमा बहुत ही कम है और निश्चित तौर पर पिछले बीस वर्षों से इसमें संशोधन की त्तकाल आवश्यकता है।

संभवत: **न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम 1948**, अधिक सफल अधिनियम रहा है, जिसमें कृषि सहित सभी प्रकार के नियोजन और व्यवसायों के लिए समुचित सरकार, केन्द्र अथवा राज्य, द्वारा न्यूनतम मज़दूरी नियत करना और समय-समय पर उनमें संशोधन करना अपेक्षित है। चूँकि इस अधिकार के प्रयोग का राजनीतिक महत्त्व है, राज्य सरकारें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी नियत करने (अथवा संशोधन करने) पर पूरा-पूरा ध्यान देती हैं। तथापि, न्यूनतम मज़दूरी लागू

करना अभी भी एक समस्या है। किंतु यह अधिनियम निश्चित रूप से उन श्रमिकों के हाथ मजबूत करता है जो अधिक संगठित हैं।

उपर्युक्त दो अधिनियम जहाँ कतिपय स्तर के ऊपर मूल मज़दूरी का भुगतान नियोजक के मौलिक उत्तरदायित्व के रूप में सुनिश्चित करते हैं, वहीं बोनस संदाय अधिनियम, 1965 में अधिशेष के एक हिस्से की भी गारंटी की गई है। इसके वर्तमान स्वरूप में (1970-72 में कतिपय संशोधन के पश्चात्) कारखाना अधिनियम, 1948 के अंतर्गत सभी कारखाने और बीस या अधिक श्रमिक (एक वर्ष के दौरान किसी भी दिन) नियोजित करने वाले सभी अन्य प्रतिष्ठानों को अपने सभी कर्मचारियों को उनके वार्षिक वेतन अथवा मज़दूरी का 8.33 प्रतिशत की दर से बोनस का भुगतान करना चाहिए। इतना ही नहीं बोनस का भुगतान लाभ अर्जित करने के सापेक्षिक नहीं है। घाटा उठाने वाले फर्म को भी इस दायित्व का पालन करना होगा। इस दृष्टि से बोनस मूल मज़दूरी के सदृश है और दोनों में अंतर सिर्फ इसकी बारम्बारता तथा भुगतान के समय के संबंध में ही है।

प्रसुविधा संघटक के संबंध में, दो अधिनियम आकस्मिक चोट, मृत्यु, और नि:शक्तता के लिए उपबंध करते हैं : **श्रमिक प्रतिकर अधिनियम, 1923 और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948**। सामान्यतया कर्मचारी इन दोनों अधिनियमों के दायरे में नहीं आते हैं। पहला अधिनियम कार्य से संबंधित दुर्घटनाओं के मामले में नियोजकों पर क्षतिपूर्ति के भुगतान का दायित्व डालता है और इसमें राज्य सरकारों की क्षतिपूर्ति को न्यूनतम तथा अधिकतम राशि विनिर्दिष्ट करने (और समय-समय पर संशोधन करने) का अधिकार दिया गया है। दूसरी ओर दूसरे अधिनियम ने बीमा व्यवस्था के सृजन का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रतिमाह 6500 रु. से अधिक अर्जित करने वाले श्रमिकों के लिए तीन पक्षों - नियोजकों, कर्मचारियों और सरकारों (केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय) द्वारा प्रशासित और वित्तपोषित अस्पतालों और क्लिनिकों का बहुत विस्तृत नेटवर्क है जिसमें वे और उनके परिवार के सदस्य मातृत्व प्रसुविधा, औद्योगिक चोटों का उपचार और सामान्य चिकित्सीय देखभाल की सुविधा ले सकते हैं। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम पूरे भारत में लागू है और इसके अंतर्गत सभी फैक्टरियाँ जो विद्युत से चलती हैं तथा 10 या अधिक व्यक्तियों को नियोजित करती हैं और दुकान, थिएटर, होटल इत्यादि जैसे प्रतिष्ठान आते हैं। वर्ष 1998 में, ई एस आई स्कीम 22 राज्यों के 640 केन्द्रों में चल रही थी जिसके अंतर्गत 8.36 मिलियन कर्मचारी और कुल 35.29 मिलियन लाभार्थी थे।

अंत में, हम सेवानिवृत्ति प्रसुविधा पर विचार करते हैं। जैसा कि भलीभाँति मालूम है, दीर्घकालीन नियोजन के साथ सदैव ही सामान्यतया सेवा निवृत्ति-पश्चात् प्रसुविधा के रूप में, आस्थगित भुगतान जुड़ा रहता है जो श्रमिक के कार्यकाल के अंतिम चरण में उसके अपने वेतन और 'सेवानिवृत्ति योजना' में उसके अपने अंशदान पर निर्भर करता है। इसके दो प्रभाव होते हैं : श्रमिकों को कड़ी मेहनत के लिए प्रोत्साहन और वृद्धावस्था बीमा। सामान्यतया, सेवानिवृत्ति योजना नियोजक और कर्मचारी दोनों के अंशदान पर आधारित होता है और पूरे विश्व में सरकारें उन्हें खूब प्रोत्साहित करती हैं।

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 सभी कारखानों और अन्य प्रतिष्ठानों के लिए अपने कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि की स्थापना अनिवार्य करता है। आरम्भ में इस अधिनियम की सीमा अत्यन्त सीमित थी और यह सिर्फ 6 उद्योगों पर लागू था। किंतु 1998 में इसके दायरे का विस्तार 177 उद्योगों तक किया गया और 2.99 लाख प्रतिष्ठान इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। 212.20 लाख अभिदाताओं को वृद्धावस्था बीमा लाभ प्रदान किया गया। इस स्कीम के अनुसार, नियोजक और कर्मचारी दोनों, भविष्य निधि ट्रस्ट में प्रत्येक, कर्मचारी की मूल मज़दूरी का लगभग 10 प्रतिशत की दर से, अंशदान करते हैं और यह कोष समय के साथ बढ़ता जाता है (प्रतिवर्ष **12 प्रतिशत** की दर से ब्याज अर्जित करता है।) कर्मचारी सेवानिवृत्ति के पश्चात् संचित राशि निकालता है। कर्मचारी परिवार पेंशन, स्कीम 1971 के नाम से 1971 में एक

थोड़ी-सी भिन्न स्कीम शुरू की गई, जिसमें एक मुश्त निकासी के स्थान पर, सेवानिवृत्त व्यक्ति अथवा उसके उत्तरजीवी को मासिक पेंशन मिलेगा।

बोध प्रश्न 3

1) मज़दूरी और बोनस से संबंधित मुख्य अधिनियमों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या मज़दूरी संदाय अधिनियम, 1936 का दायरा समय के साथ विस्तृत हो रहा है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) सही के लिए (हाँ) और गलत के लिए (नहीं) लिखिए।

क) बोनस संदाय अधिनियम सिर्फ लाभ अर्जित करने वाले कारखानों पर लागू होता है। ( )

ख) न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 प्रबन्धकों पर लागू नहीं होता है। ( )

ग) मज़दूरी संदाय अधिनियम, 1936 कम मज़दूरी वाले श्रमिकों पर लागू होता है। ( )

घ) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम न सिर्फ कर्मचारी, अपितु उसके/उसकी परिवार के सदस्यों के लिए भी चिकित्सा बीमा का उपबंध करता है। ( )

31.4 औद्योगिक संबंधों से जुड़े विधान

मज़दूरी संबंधी बातचीत, अन्य सामूहिक सौदाकारी और संबंधित औद्योगिक विवादों के संदर्भ में औद्योगिक विधान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। चूँकि जब सहयोग विफल हो जाता है, कानून की शक्ति उसी समय सबसे अधिक महसूस की जाती है, यह स्वाभाविक है कि कर्मचारी और नियोजक न्यूनतम खर्च पर समुचित सहमति पर पहुँच जाएँ यह सुनिश्चित करने के लिए विधानों के व्यापक समूह की आवश्यकता होती है। यहाँ कानून का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को न्याय दिलाना और कुशलता प्राप्त करना है। वितरणीय उद्देश्य की माँग है कि सामूहिक सौदाकारी का परिणाम 'समुचित' हो अर्थात् एक ही पक्ष सभी फायदों को नहीं हड़प ले। कुशलता उद्देश्य तब पूरा होता है जब हम न्यूनतम समय की बर्बादी करके और बिना व्ययपूर्ण कार्रवाइयों जैसे हड़तालों और तालाबंदियों के सहमति पर पहुँच जाते हैं। निःसंदेह, ये दो उद्देश्य शायद ही पूरा हो पाते हैं और हड़ताल अथवा सौदाकारी जैसे गतिरोध आम हैं। अतएव, कानून को निलंबित सौदाकारी (गत्यावरोध की स्थिति) को भी ध्यान में रखना चाहिए और सुनियोजित कार्रवाइयों की सीमा अवश्य

विनिर्दिष्ट कर देना चाहिए ताकि बातचीत न्यायिक प्रक्रिया से विचलित नहीं हो जाए। इसके अलावा, कानून में यह भी गुंजाइश रहना चाहिए कि राज्य हस्तक्षेपकारी अथवा मध्यस्थ की भूमिका निभा (विशेषकर लम्बे समय तक जारी विवादों में) सके जिससे कि कम से कम कुशलता का उद्देश्य पूरा किया जा सके। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि श्रम विवादों का फर्म के अन्य संबंधों जैसे निवेशकों, आपूर्तिकर्त्ताओं वितरकों इत्यादि के साथ संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, यह तर्क और अधिक बाध्यकारी हो जाता है।

तीन प्रमुख अधिनियम भारत में औद्योगिक संबंधों को विनियमित करते हैं : (i) *औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश अधिनियम, 1946* (ii) *श्रमिक संघ अधिनियम, 1926* (iii) *औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947।*

चूँकि हम औद्योगिक नियोजन अधिनियम पर पहले ही विचार कर चुके हैं, इस भाग में हम श्रमिक संघ अधिनियम और औद्योगिक विवाद अधिनियम पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। संक्षेप में, यह उल्लेखनीय है कि औद्योगिक नियोजन अधिनियम ने श्रम ठेकों को पूर्ण और वैधानिक रूप से रक्षणीय बनाने का प्रयास किया। इस अधिनियम के अंतर्गत फर्म का न सिर्फ नियोजन की शर्तों को स्पष्ट करना अपितु पहले ही कार्यकाल के निलंबन अथवा समाप्ति के संभावित दृष्टांत बताना दायित्व बन गया। इस मामले में ज्ञात विफलता, परिस्थितियों का पूर्ण रूप से सूची में सम्मिलित नहीं किया जाना, कटु विवाद को जन्म दे सकते हैं। इस अधिनियम में निलंबित किंतु विभागीय जाँच के अंतर्गत श्रमिक के लिए जीवन निर्वाह भत्ता (10 दिनों के मज़दूरी के पचास प्रतिशत की दर पर) का भी उपबंध करता है।

श्रमिक संघ अधिनियम: श्रमिक संघ अधिनियम उन कुछ कानूनों में से एक है जो औपनिवेशिक दिनों से ही लगभग अपरिवर्तित रहा है। इस अधिनियम में परिवाद अभिव्यक्त करने, सामूहिक सौदाकारी में सम्मिलित होने और स्वयं के बीच नागरिक तथा राजनीतिक हितों के संवर्धन के लिए श्रमिकों द्वारा संघ के गठन को मान्यता दी गई है। संघ के पंजीकरण के लिए कम से कम सात सदस्यों की आवश्यकता होती है और इसकी स्थापना कारखाना स्तर तथा उद्योग स्तर पर की जा सकती हे। संघ के आधे पदाधिकारी अनिवार्य रूप से उस उद्योग में नियोजित होने चाहिए जिसका कि वह संघ है। इस अधिनियम का एक सबसे महत्त्वपूर्ण उपबंध यह है कि संघ के सदस्यों और पदाधिकारियों को वास्तविक व्यवसाय संघ कार्यकलापों के संबंध में आपराधिक और सिविल मुकदमे से सुरक्षा प्रदान की गई है।

जहाँ इस अधिनियम का ट्रेड यूनियनवाद में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, पिछले पचास वर्षों में बदली हुई परिस्थितियों के मद्देनज़र इसमें संशोधन के लिए कुछ नहीं किया गया है। यदि हम ध्यानपूर्वक पढ़ें, तो इस अधिनियम में पहले ही मान लिया गया है कि ट्रेड यूनियन (श्रमिक संघ) स्पष्टत: श्रमिक संघ का रूप है जो राजनीतिक और नागरिक हितों के संवर्धन सहित अनेक कार्यकलापों में संलग्न होता है। इसलिए, यह एक अनुत्तरित प्रश्न रह जाता है कि यूनियन का कौन सा कार्यकलाप वास्तविक नहीं है। यदि मज़दूरी माँगों को लेकर किये गये हड़ताल को वैध यूनियन व्यवहार कहा जाए तो असंबद्ध और दूरगामी राजनीतिक मुद्दों के लिए काम रोकना भी वैध यूनियन कार्यकलाप माना जा सकता है। इस अधिनियम के सामान्य स्वरूप और पदाधिकारियों के लिए (सिविल अथवा आपराधिक मुकदमों से) विशेष उन्मुक्ति उपबंधों के कारण ट्रेड यूनियनों ने राजनीतिक संरक्षण को आकर्षित किया है और संभवत: सामूहिक सौदाकारी के परिदृश्य को जटिल बना दिया है।

पिछले तीस वर्षों में, ट्रेड यूनियन सामूहिक सौदाकारी के शक्तिशाली संघ बन गए हैं और श्रमिक संघ अधिनियम के लक्ष्यों में तद्नुरूप परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे कि इसको अधिक विशिष्ट और अधिक प्रभावी बनाया जाए। उदाहरण के लिए श्रमिक संघ अधिनियम यह निर्धारित करने में

कि क्या संघों को मज़दूरी पर सौदाकारी करने का कानूनी अधिकार है अथवा नहीं, सहायक नहीं है। न ही इसमें यह कहा गया है कि एक से अधिक संघ होने की स्थिति में कौन सा संघ सौदाकारी एजेन्ट होगा। क्या सौदाकारी इकाई स्तर पर होना चाहिए अथवा उद्योग स्तर पर? क्या नियोजकों के अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों जैसे नए लोगों को मज़दूरी पर रखने, कामबंदी और आधुनिकीकरण के संबंध में संघ के साथ विचार-विमर्श करना आवश्यक है? श्रमिक संघ अधिनियम इन प्रश्नों पर मूक है और अन्य अधिनियम भी इस मामले में सहायक नहीं है। परिणामस्वरूप, राज्य और कभी-कभी न्यायालय को इस शून्य को भरने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ता है।

श्रमिक संघ अधिनियम में अस्पष्टता के बावजूद नियोजक, संघों के साथ बातचीत करना श्रेयस्कर समझते हैं और मज़दूरी (तथा अन्य विषयों) को कानूनी रूप से बाध्यकारी समझौता का अंग बना देते हैं। राज्य सरकारें भी सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करती हैं। इसलिए संघ वस्तुत: अनेक विषयों पर सौदाकारी कर सकता है और चूँकि किसी एक संघ का श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का वैधानिक एकाधिकार नहीं होता है, अनेक संघ सौदाकारी के लिए उपस्थित हो जाते हैं और प्रत्येक संघ बड़ी संख्या में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का दावा भी करते हैं। इस तरह की समस्याओं का समाधान श्रमिक संघ अधिनियम में संशोधन करके किया जा सकता है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम: कार्य के निबंधन और शर्तों संबंधी कोई भी विवाद अथवा मज़दूरी या किसी अन्य विषय के ऊपर बातचीत के दौरान असहमति औद्योगिक विवाद अधिनियम के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता है। व्यवसाय विवाद अधिनियम, 1929 के स्थान पर पहली बार 1947 में पारित औद्योगिक विवाद अधिनियम पूरे भारत में औद्योगिक संबंधों के मामले में मुख्य शासी विधान है। चूँकि समय बीतने के साथ इसका महत्त्व बढ़ता गया, इसकी कमियों को दूर करने के लिए और साथ ही साथ राज्य की हस्तक्षेपकारी भूमिका को सुदृढ़ करने के लिए इसमें 1964, 1965, 1971, 1976, 1982 और 1984 में अनेक संशोधन पारित किए गए।

इस अधिनियम का लक्ष्य कानूनी ढाँचा और सरकारी तंत्र का सृजन करना था जिसके अंदर औद्योगिक विवादों को शांतिपूर्वक ढंग से सुलझाया जा सके। इस अधिनियम के मुख्य उपबंध हैं : (1) हड़तालों और तालाबंदी की वैधता की परिभाषा करना, (2) कामबंदी, छँटनी और बंद करने के लिए प्रतिबंधात्मक प्रक्रिया (3) कामबंदी और छँटनी के लिए क्षतिपूर्ति (4) सुलह प्रक्रिया और (5) न्याय निर्णयन की त्रिस्तरीय प्रणाली।

हड़ताल अथवा तालाबंदी की वैधता इस प्रश्न पर केन्द्रित है कि क्या इसका प्रयोग उचित रीति से किया गया है। उदाहरणस्वरूप, सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं में अचानक हड़ताल अथवा तालाबंदी अवैध है; इस विषय में पूर्व सूचना दिया जाना आवश्यक है। सभी उद्योगों में, यदि विवाद पहले ही सुलह अथवा न्याय निर्णयन के अन्तर्गत है, तो नया हड़ताल अथवा तालाबंदी निषिद्ध है (किंतु पुरानी हड़ताल अथवा तालाबंदी के जारी रहने को अनुमति दी जा सकती है)। दूसरी ओर, अवैध तालाबंदी या हड़ताल के बदले में हड़ताल अथवा तालाबंदी पूरी तरह से वैधानिक है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि हड़ताल करने वाले कर्मचारियों को अधिनियम में यथा परिभाषित 'श्रमिक' होना चाहिए, जिसका अभिप्राय यह है कि उसकी मज़दूरी एक निश्चित स्तर से कम होनी चाहिए और उसका नियोजन प्रबन्धकीय और प्रशासनिक क्षमता में नहीं होना चाहिए।

कामबंदी, छँटनी और इकाई को बंद करने के संबंध में नियम काफी प्रतिबन्धात्मक हैं। जैसा हमने पहले देखा कि औद्योगिक नियोजन अधिनियम में नौकरी के निलंबन और समाप्ति के लिए शर्तों के विनिर्दिष्ट करने की आवश्यकता है। इसमें से अधिकांश अनुशासनात्मक प्रकृति के हैं। यदि कामबंदी वास्तविक अथवा पूर्वानुमानित वित्तीय घाटों द्वारा प्रेरित है तब औद्योगिक नियोजन अधिनियम अपर्याप्त हो सकता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1976 में नियोजकों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह कामबंदी अथवा किसी श्रमिक की छँटनी अथवा इकाई को बंद करने से पहले

सरकार से पूर्व अनुमति ले। इस समय यह शर्त (औद्योगिक विवाद अधिनियम अध्याय ट-ख में संहिताबद्ध) 100 या अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाले सभी उद्योगों पर लागू होती है। इसका उल्लंघन करने पर नियोजक पर भारी दंड लगाया जा सकता है, साथ ही कामबंदी श्रमिकों को बहाल भी करना पड़ता है। इस विशेष उपबंध की अत्यधिक प्रतिबन्धात्मक और अन्तरराष्ट्रीय मानकों द्वारा असामान्य मानकर काफी आलोचना की गई है और सरकार भी श्रमिक विरोधी के रूप में देखे जाने के भय से छँटनी अथवा कामबंदी के लिए अनुमति प्रदान करने में रूढ़िवादी रही है। उदाहरण के लिए, 1977 में, केन्द्र सरकार को कामबंदी/छँटनी/इकाई बंद करने के लिए 60 आवेदन प्राप्त हुए थे, किंतु सिर्फ 6 मामलों में अनुमति प्रदान की गई। असामान्य रूप से इतनी कम दर पर स्वीकृतियों के कारण अध्याय ट-ख के उपबंधों को अभी भी घाटा पर चल रहे उपक्रमों के पुनर्गठन के लिए सबसे बड़ा रोड़ा माना जा रहा है।

यद्यपि कि बड़े फर्मों में (100 या अधिक श्रमिकों वाले) सरकारी अनुमति के अध्यधीन अपेक्षाकृत छोटे अथवा मध्यम आकार के फर्म औद्योगिक नियोजन अधिनियम (जहाँ कहीं यह लागू है) के अनुपालन में स्वतंत्रतापूर्वक कामबंदी अथवा छँटनी कर सकते हैं। छँटनी की किसी भी स्थिति में, 'पीछे आवत पहले जावत' सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है। किंतु सभी कामबंदी अथवा छँटनी वाले श्रमिक क्षतिपूर्ति के लिए पात्र नहीं होते हैं। यदि एक फर्म औद्योगिक विवाद और औद्योगिक नियोजन अधिनियमों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत है और 50 अथवा अधिक श्रमिकों को नियोजित करता है, किसी भी श्रमिक जिसे यह वैध तरीके से कामबंदी अथवा छँटनी कर सकता है को क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए वैधानिक रूप से बाध्य है। क्षतिपूर्ति की राशि का निर्धारण कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य के वर्षों की संख्या और उसकी कामबंदी पूर्व (अथवा छँटनी पूर्व) मज़दूरी के आधार पर किया जाता है। तथापि, इस तरह के दायित्व सिर्फ स्थायी अथवा नियमित श्रमिकों के लिए होते हैं। अनियत अथवा बदली श्रमिक इस तरह की क्षतिपूर्ति का दावा नहीं कर सकते हैं।

अंत में सरकारी तंत्र का प्रश्न आता है जो औद्योगिक विवाद अधिनियम का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह मान लिया गया है कि सरकार (राज्य अथवा केन्द्र) सामूहिक सौदाकारी के सभी मामलों में सावधान रहेगी। यदि सौदाकारी किसी भी बिंदु पर अटक जाती है और पक्षों में समुचित समयावधि के अन्दर समाधान नहीं निकल पाता है, तो सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए। सामान्यतया, बड़े फर्म अर्थव्यवस्था में अपने महत्त्व के कारण सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हैं। श्रम मंत्रालय (राज्य और केन्द्र दोनों में) का शीघ्र निपटारे को सुगम बनाना भी एक महत्त्वपूर्ण कृत्य है।

सरकार का काम सुलह के प्रयासों के साथ शुरू होता है। तटस्थ पार्टी के रूप में, यह सुलह अधिकारी, अथवा सुलह बोर्ड अथवा जाँच न्यायालय की नियुक्ति करती है जो विवादग्रस्त पक्षों के परामर्श से विवादों के निपटारे के लिए उपाय खोजती है। सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं के लिए सभी अनिर्णीत विवादों को सुलह बोर्ड को सौंपना अनिवार्य है। सुलह बोर्ड का निर्णय सभी पक्षों पर बाध्यकारी होता है। किंतु यदि कोई निर्णय नहीं हो पाता है (अर्थात् विवाद में सम्मिलित पक्षों द्वारा सभी सुझावों को अस्वीकार कर दिया जाना) तो नि:संदेह यह मामला पुन: सरकार को वापस भेज दिया जाता है, जिसके पास फिर इसे न्यायनिर्णयन के लिए सौंपने का विकल्प है। तथापि, न्याय निर्णयन की प्रक्रिया शुरू होने से पहले विभिन्न पक्ष स्वैच्छिक मध्यस्थता का विकल्प चुन सकते हैं। यदि ऐसा होता है तो सरकार द्वारा नियुक्त मध्यस्थ एक निर्णय रखेगा जिसे सभी पक्षों को स्वीकार करना होगा और विवाद का समाधान हो जाएगा। किंतु चूँकि इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि निर्णय सभी पक्षों को संतुष्ट करेगा, कम से कम उनमें से एक मध्यस्थता के लिए सहमत नहीं होगा, और इस स्थिति में न्याय निर्णयन ही एक मात्र विकल्प बचा रहता है। तथापि, केन्द्र सरकार ने जहां वह स्वयं नियोजक है संघ और कर्मचारियों के बीच विवादों के लिए अनिवार्य मध्यस्थता की नीति अपनाई है। वर्ष 1966 से यह नीति है और वेतन तथा भत्तों, काम के साप्ताहिक घंटों और कतिपय संवर्गों के कर्मचारियों की छुट्टी से संबंधित विवाद अंत: मध्यस्थता के माध्यम से निपटाए जाते हैं।

न्यायनिर्णयन मुख्य रूप से कानूनी प्रक्रिया है। विशेष न्यायालयों जिसमें श्रम न्यायालय, औद्योगिक न्यायाधिकरण और राष्ट्रीय न्यायाधिकरण सम्मिलित हैं कि त्रिस्तरीय व्यवस्था है। इसमें से राष्ट्रीय न्यायाधिकरण जो पूरी तरह से केन्द्र सरकार के क्षेत्राधिकार में है अनन्य रूप से औद्योगिक विवादों के लिए है। 1997 में देश में कुल 343 श्रम न्यायालय और औद्योगिक न्यायाधिकरण थे, जिसमें से 12 की स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की गई थी। श्रम न्यायालय नियोजन, नियोजन की समाप्ति, हड़तालों की वैधता इत्यादि (जो औद्योगिक विवाद अधिनियम की दूसरी अनुसूची में सूचीबद्ध हैं) से संबंधित विवादों से निपटते हैं। औद्योगिक न्यायाधिकरण श्रम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आने वाले किसी भी विषय और मज़दूरी, क्षतिपूर्ति, बोनस इत्यादि (जो औद्योगिक विवाद अधिनियम की तीसरी अनुसूची में सूचीबद्ध हैं) से संबंधित विवादों से निपट सकती हैं। यदि निचले स्तर के ये दो निकाय विवाद का समाधान करने में विफल रहते हैं तो यह राष्ट्रीय न्यायाधिकरण को सौंपा जा सकता है। तथापि, राष्ट्रीय महत्त्व के विवादों, ऐसे मामले जिसमें एक से अधिक राज्य सम्मिलित हैं, इस शीर्षस्थ निकाय में सीधे भेजे जा सकते हैं। औद्योगिक न्यायाधिकरणों की प्रभावशीलता का प्रमाण कुछ हद तक मिला जुला है, वर्ष 1998 में केन्द्रीय न्यायाधिकरणों में निपटान दर (समाधान विवादों की संख्या को लंबित विवादों की संख्या से विभाजित करने पर आने वाला भाग फल) मात्र 10 प्रतिशत था। नि:संदेह एक वर्ष से दूसरे वर्ष में इस दर में काफी अंतर है। न्यायाधिकरणों के शीघ्रतापूर्वक कार्य नहीं कर पाने का एक मुख्य कारण उनके पास आने वाले मामलों की बड़ी संख्या है। इसके बावजूद भी यह अंतिम उपाय है और यहाँ समाधान नहीं होने का अर्थ है विवाद का अनिर्णीत रह जाना।

बोध प्रश्न 4

1) श्रमिक संघ अधिनियम, 1926 की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) औद्योगिक विवाद अधिनियम में यथा परिकल्पित सरकारी तंत्र की भूमिका का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सही के लिए (हाँ) और गलत के लिए (नहीं) लिखिए।

क) औद्योगिक विवाद सिविल न्यायालयों में निपटाए जाते हैं। ( )

ख) औद्योगिक विवादों को निपटाने में सरकार से सक्रिय भूमिका निभाने की आशा की जाती है। ( )

ग) श्रमिक संघ अधिनियम, 1926 के अनुसार व्यवसाय संघ कार्यकलाप का विस्तार राजनीतिक कार्यकलापों तक अनिवार्य रूप से नहीं होना चाहिए। ( )

घ) औद्योगिक विवाद अधिनियम के अनुसार, 100 या अधिक श्रमिक वाले फर्म सरकार की अनुमति के बिना श्रमिकों की छँटनी नहीं कर सकते हैं। ( )

ङ) 50 अथवा अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाले फर्मों में कामबंदी क्षतिपूर्ति अनिवार्य है। ( )

31.5 सारांश

भारत में औद्योगिक संबंधों का वैधानिक ढाँचा पर्याप्त रूप से व्यापक है और इसमें नियोजक-कर्मचारी संबंधों के सभी महत्त्वपूर्ण आयाम शामिल किए गए हैं। इस ढाँचे के विकास की विशेषता औद्योगीकरण की आरम्भिक अवधियों (स्वतंत्रता पूर्व) से लेकर समीचीन विश्व के श्रमिकों के चिन्ता की निरन्तरता है। इतना ही नहीं, राज्य और केन्द्र के संयुक्त क्षेत्राधिकार के कारण श्रम संबंधों से जुड़े कानूनों की संख्या स्पष्ट रूप से अत्यधिक है। ये अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अधिदेशों और समर्थन के अनुरूप भी हैं।

फिर भी कुछ आपत्तियाँ की जा सकती हैं। अनेक शोधकर्त्ताओं का मानना है कि अच्छे विधानों के बावजूद प्रवर्तन और राज्य विनियमन संतोषप्रद नहीं है, और औद्योगिक शांति बनाए रखने में भारत का रिकार्ड विशेष रूप से सराहनीय नहीं है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि न्यायिक और सरकारी हस्तक्षेप में बहुधा समन्वय की कमी होती है और कभी-कभी वे विरोधी उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, एक रुग्ण औद्योगिक इकाई दिवालिया घोषित किए जाने के लिए बी आई एफ आर में आवेदन कर सकती है और वह लंबित न्यायनिर्णयन से किनारा कर सकता है और इस प्रकार श्रम न्यायालय द्वारा दी गई व्यवस्था के अनुपालन से बच सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि एक ही अधिनियम के विभिन्न भागों के लिए अलग-अलग आकार की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक विवाद अधिनियम 50 या अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाले सभी फर्मों के लिए कामबंदी क्षतिपूर्ति को अनिवार्य करता है, किंतु सरकार से कामबंदी अनुमति की तभी आवश्यकता होगी यदि फर्म का आकार 100 श्रमिकों से अधिक है। ऐसी फर्में जिसमें 50 से कम श्रमिक हैं कामबंदी क्षतिपूर्ति अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ बृहत् फर्मों के लिए विधानों की भरमार है, वास्तव में छोटे फर्मों के लिए इनकी कमी है। वास्तव में अनौपचारिक क्षेत्र, जिसमें 80 प्रतिशत औद्योगिक श्रमिक नियोजित हैं, पूरी तरह से औद्योगिक विवाद और औद्योगिक नियोजन अधिनियमों द्वारा विहित, दायित्वों से मुक्त हैं। इसके परिणामस्वरूप, श्रमिकों को अपने हित साधन के लिए स्थानीय यूनियनों (क्योंकि यूनियन का गठन हर जगह नहीं किया जा सकता है), और न कि सरकारी तंत्र पर, निर्भर करना पड़ा और इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर राजनीतिक दल अथवा उनके सहायक संगठन की इनमें घुसपैठ हुई। अतएव सामूहिक सौदाकारी तंत्र भी अनौपचारिक और राजनीतिक स्वरूप वाला हो गया। इन बातों के कहने के बाद हमें अवश्य आशा करनी चाहिए कि हमारे विधान सभी प्रकार के फर्मों और सभी श्रमिकों की आवश्यकताओं और धारणीय औद्योगिक शान्ति के आवश्यकतानुरूप होंगे।

31.6 शब्दावली

सामूहिक सौदाकारी : नियोजक (अथवा नियोजकों) और कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व के रूप में यूनियनों के बीच बातचीत, सामूहिक सौदाकारी कहलाता है। इस तरह की सौदाकारी मज़दूरी, बोनस, कामबंदी, छँटनी, आधुनिकीकरण और मज़दूरी पर नए लोगों के रखने के संबंध में हो सकता है।

औद्योगिक विवाद : विशेषरूप से हड़ताल और तालाबंदी औद्योगिक विवादों के दो मुख्य घटक हैं, हालाँकि विवाद के अन्य अनेक रूप भी हो सकते हैं। परिवाद की अभिव्यक्ति या सामूहिक सौदाकारी में लाभ उठाने के लिए श्रमिकों द्वारा सोंच समझकर, बड़े पैमाने पर और संगठित अनुपस्थिति हड़ताल है। तालाबंदी श्रमिकों की कुछ माँगों को पूरी नहीं करने अथवा सौदाकारी की अपनी स्थिति सुदृढ़ करने अथवा घाटा को कम करने के लिए नियोजकों द्वारा घोषित अस्थायी बंदी है। ये विवाद प्राय: तब होते हैं जब सौदाकारी में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है।

कामबंदी : पुन: बुलाए जाने की संभावना के साथ अस्थायी तौर पर नौकरी की समाप्ति।

छँटनी : नौकरी की स्थायी तौर पर समाप्ति।

सुलह : विवाद में सम्मिलित सभी पक्षों के साथ चर्चा के माध्यम से विवादों के निपटारे में सरकार की मध्यस्थता।

न्यायानिर्णयन : वैधानिक उपबंधों के माध्यम से विवादों का निपटारा।

31.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

अनन्त, टी.सी.ए., के. सुन्दरम और एस. डी. तेन्दुलकर, (1998). *एम्पलायमेण्ट पॉलिसी इन साउथ एशिया*, इंटरनेशनल लेबर ऑफिस

फैलॅन, पीटर और रूॅबर्ट ई. बी. लूकस, (1993) "जॉब सिक्यूरिटी रेग्युलेशन एण्ड दि डायनामिक डिमाण्ड फोर इण्डस्ट्रियल लेबर इन इंडिया एण्ड जिम्बाब्वे'' *जर्नल ऑफ डेवपलपमेंट इकोनॉमिक्स*, खंड 40, सं. 2

मौली, वी.सी. (1990). *लेबर लैण्डस्केप : ए स्टडी ऑफ इण्डस्ट्रियल एण्ड एग्रेरियन रिलेशन्स इन इंडिया*, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

रामास्वामी, ई.ए. और उमा रामास्वामी, (1995). *इंडस्ट्री एण्ड लेबर : ऐन इण्ट्रोडक्शन*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

वेंकट रत्नम, सी.एस., (1995) "इकोनॉमिक लिबरलाइजेशन एण्ड दि ट्रांसफोर्मेशन ऑफ इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स पॉलिसीज इन इंडिया'' ए. वर्मा, टी.ए. कोचन और आर.डी. लैण्ड्सबरी (eds.), *एम्प्लायमेंट रिलेशन्स इन दि ग्रोइंग एशियन इकोनोमीज़*, रूटलेज़, सांख्यिकी प्रकाशन में।

इंडियन लेबर ईयर बुक, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार।

31.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 31.1 पढ़िए।

2) भाग 31.1 पढ़िए।

बोध प्रश्न 2

1) यह अधिनियम भर्ती की शर्तों, स्थायीकरण, कदाचार, सेवामुक्ति, अनुशासनिक कार्रवाई, छुट्टी, अवकाश इत्यादि का अनुबंध करता है और नियोजकों द्वारा इन शर्तों को अत्यन्त स्पष्ट रूप से कर्मचारियों को बताने की अपेक्षा करता है।

2) (1) कारखाना श्रमिकों के लिए कारखाना अधिनियम, 1948 (2) खान श्रमिकों के लिए खान अधिनियम, 1952 (3) रेलवे श्रमिकों के लिए भारतीय रेल अधिनियम, 1980 और 1956 (संशोधन) (4) पत्तन श्रमिकों के लिए डॉक श्रमिक (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1948

3) (क) नहीं (ख) हाँ (ग) नहीं (घ) हाँ

बोध प्रश्न 3

1) मज़दूरी संदाय (भुगतान) अधिनियम, 1936 और बोनस संदाय (भुगतान) अधिनियम, 1965

2) औद्योगिक नियोजन अधिनियम के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत अधिक उद्योग लाए गए हैं। उस अर्थ में, इसका दायरा व्यापक हुआ है। किंतु श्रमिकों की दृष्टि से इसका दायरा घटा है। इसका कारण यह है कि सम्मिलित किए जाने वाले श्रमिकों के लिए अधिकतम सीमा के रूप में नियत मज़दूरी स्तर में बार-बार संशोधन नहीं किया गया है। 1982 से यह स्तर 1600 रु. प्रतिमाह है। यह निश्चित तौर पर श्रमिकों के बड़े भाग को बाहर छोड़ देता है।

3) (क) नहीं (ख) हाँ (ग) हाँ (घ) हाँ

बोध प्रश्न 4

1) श्रमिक संघ अधिनियम, 1926 परिवादों को अभिव्यक्त करने, सामूहिक सौदाकारी में सम्मिलित होने और नागरिक तथा राजनीतिक हितों का अपने बीच संवर्धन के लिए भी संघ बनाने की श्रमिकों की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान करता है। एक यूनियन के पंजीकरण के लिए कम से कम सात सदस्यों की आवश्यकता होती है और यह कारखाना स्तर और उद्योग स्तर पर स्थापित किया जा सकता है।

2) औद्योगिक विवाद अधिनियम में सामूहिक सौदाकारी और औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए कानूनी ढाँचे और सरकारी तंत्र का उपबंध किया गया है। अधिक विवरण के लिए भाग 31.4 पढ़िए।

3) भाग 31.4 पढ़िए।

4) (क) नहीं (ख) हाँ (ग) नहीं (घ) हाँ (ड.) हाँ।